क्या राजनीति सिर्फ जोड़-तोड़ का खेल भर है ?

विपक्ष चाहता तो सिर्फ राजनीतिक दांवपेंचों में न पड़कर मीरा कुमार से बेहतर उम्मीदवार चुन सकता था। लेकिन वह भी प्रतीकों की राजनीति से ऊपर नहीं उठ सका

अपूर्वानंद

राजनीति क्या सिर्फ रणनीति का खेल है ? क्या उसमें आदर्श की संभावना पूरी तरह समाप्त हो गई है ? क्या अब हम किसी राजनेता या दल की प्रशंसा सिर्फ इसलिए करने को बाध्य हैं कि उसने कुशल या चतुर रणनीति के जरिए अपने विरोधियों को हक्का-बक्का कर दिया है ? राष्ट्रपति पद के लिए होने वाले चुनाव में अलग-अलग राजनीतिक दलों की भूमिका ने हमें इन इन सवालों पर पर नए सिरे से सोचने को मजबूर किया है।

भारतीय जनता पार्टी द्वारा राष्ट्रपति पद के उम्मीदवार के रूप में जब जन्मना दलित रामनाथ कोविंद के नाम की घोषणा की गई तो ऐसा माना गया मानो उसने अपना तुरुप का पत्ता विपक्ष के मुंह पर फेंक दिया है और अब विपक्ष के पास कोई चारा ही नहीं बचा है। रामविलास पासवान ने तो आगे बढ़कर कह ही डाला कि जो कोविंद का विरोध करेगा वह दलित विरोधी माना जाएगा।

मीडिया फिर से भारतीय जनता पार्टी के नेताओं की इस चाल पर, जिसमें विपक्ष के लिए मात ही मात थी, मुग्ध हो उठा। कुछ ऐसी ही हालत उसकी उस वक्त हुई थी जब अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व ने एपीजे अब्दुल कलाम का नाम राष्ट्रपति पद के लिए प्रस्तावित किया गया था।

कलाम का नाम 2002 के गुजरात की मुस्लिम विरोधी हिंसा के बाद आया था। यह तथ्य है कि गुजरात की हिंसा चल नहीं सकती थी अगर वहां की तत्कालीन सरकार ने या तो उसे शह न दी होती या उसकी ओर से आंख न मूंद ली होती। भारतीय जनता पार्टी के केंद्रीय नेतृत्व ने भी गुजरात के अपने नेतृत्व को अनुशासित करने के लिए कुछ नहीं सकता। यह एक अलग बात है कि कलाम एक हिंदू दीखते मुसलमान थे। उन्हें देखकर मुझे बचपन में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के लोगों से सुनी यह बात याद आ गई कि मुसलमान 'मोहमडन हिंदू' के रूप में उन्हें स्वीकार्य हैं।

कोविंद का नाम उस समय इस पर क्या थी - दलितों को न मारो, भले मुझे मार लो !

कोविंद या उन जैसे किसी दलित का नाम आ सकता है, यह कयास पहले से लगाया जा ही रहा था। यह फिर एक चुस्त चाल है-आप भाजपा को दलित विरोधी कैसे कह सकते हैं जब वह एक दलित का नाम देश

किया। इससे उसकी छवि पर मुस्लिम विरोधी का जो धब्बा पहले से लगा था, वह और गाढ़ा हो गया। एपीजे अब्दुल कलाम का नाम इसी पृष्ठभूमि में लाया गया था। कलाम के चुनाव ने आखिर यह दिखा दिया कि भाजपा को मुसलमानों से परहेज नहीं, आखिर वह एक मुसलमान को राष्ट्रपति तक बनाने को तैयार है और गुजरात में जो कुछ हुआ उसे भाजपा का मुस्लिम विरोध नहीं कहा जा प्रस्तावित किया गया है जब देश में दलित क्षोभ अलग-अलग रूप में जाहिर हो रहा है। इसका कारण खासकर पिछले तीन सालों में दलितों पर बढ़े हमले हैं। रोहित वेमुला के मामले में सत्ता में बैठे लोगों ने अपनी पूरी ताकत यह साबित करने में लगा दी कि रोहित वेमुला दलित थे ही नहीं। उसके बाद दलितों पर आक्रमण की घटनाएं बढ़ती चली गई हैं। और सरकार के मुखिया की प्रतिक्रिया के सर्वोच्च पद के लिए प्रस्तावित कर रही हो ! आखिर फली नरीमन जैसे संविधान के जानकार ने भी इसके लिए सरकार को बधाई दे ही डाली और अकादमिक जगत के दलित मुद्दों के विशेषज्ञ भी यह कह रहे हैं कि इस कदम से भाजपा ने खुद को एक सर्वसमाज का दल साबित किया है और विरोधी दलों का यह मुद्दा निष्प्रभावी कर दिया है कि सरकार दलित विरोधी है।

विपक्ष ने इस पर प्रत्याशित प्रतिक्रिया ही दी, कोविंद के नाम के जवाब में मीरा कुमार का नाम प्रस्तावित करके। उसका यह कदम इसलिए भी विश्वसनीय नहीं क्योंकि शह और मात के खेल में वह पिछड़ गया है। अगर वह किसी इससे ज्यादा उपयुक्त नाम के साथ पहले ऐसा कर पाता तो बात कुछ और हो सकती थी। एक प्रतीकात्मक दलित का जवाब उसी तरह का एक और दलित, इसमें कुछ अश्लीलता है क्योंकि ऐसा लगता है कि लक्ष्य तो कुछ और है, दलित उपलक्ष्य मात्र है।

यहां विपक्ष एक बड़ा मौका चूक गया। वह संसदीय राजनीति के पहचाने हुए दांवपेंच में पड़ने से इनकार करते हुए यह कह सकता था कि राष्ट्रपति का पद उसके लिए संवैधानिक मूल्यों की रक्षा से जुड़ा हुआ है और वह इसे सामाजिक न्याय के प्रतीकों के खेल में शेष नहीं करना चाहता। गोपाल कृष्ण गांधी का नाम इसीलिए उपयुक्त था कि अपनी उदार वाम छवि के बावजूद उन्होंने बंगाल का राज्यपाल रहते हुए सिंगूर और नंदीग्राम की राज्य समर्थित हिंसा की आलोचना की थी और वाम मोर्चा सरकार को संवैधानिक आदर्शों की याद दिलाई थी। लेकिन सुना जाता है कि खुद उन्होंने एक दलित का नाम प्रस्तावित करने का सुझाव दिया। इससे सिर्फ यह पता चलता है कि रणनीति ही अब आदर्श या मूल्य का भ्रम देने लगी है और अच्छे खासे लोग भी इसके झांसे में आ सकते हैं।

भारत खुद को आदर्शों का देश कहता रहा है लेकिन आदर्श का पक्ष लेना यहां अब दुस्साहस या मूर्खता से ज्यादा कुछ नहीं है। इस समय भारत को उन देशों की ओर देखने की ज़रूरत है जिनकी संस्कृति को पाश्चात्य कहकर उन्हें हीन ठहराने की उसे आदत पड़ चुकी है। हाल में ब्रिटेन में हुए चुनाव में जेरेमी कोर्बिन ने न सिर्फ आर्थिक मसलों पर, बल्कि सामाजिक प्रश्नों पर भी वह रुख लिया जिसे इस समय दुस्साहसी कहा जाएगा। उनके पहले फ्रांस में मैक्रोन इमैनुअल ने भी स्पष्ट रूप से राष्ट्रवाद का विरोध किया था और जर्मनी में भी राज्य के नेतृत्व ने अलोकप्रियता का खतरा उठाकर शरणार्थियों के लिए अपने दरवाजे खोलने का ऐलान किया था।

ये राजनेता डरे नहीं, उन्होंने जनता को झांसा देने की कोशिश नहीं की, उनसे स्पष्ट रूप से आदर्शों के संघर्ष में अपना पक्ष चुनने को कहा। यह साहस भारत के राजनीतिक नेतृत्व में नहीं है, फिर भी वह जाने क्यों खुद को किसी कल्पित महान संस्कृति का वारिस बताता है। (सत्याग्रह)

नीतीशजी! इस तरह से नहीं सधेगा 2019 का आपका लक्ष्य

अरुण माहेश्वरी

नीतीश जी कोविंद को समर्थन देने के मामले में अडिग हैं। वे इस विषय में कोई तर्क सुनना नहीं चाहते क्योंकि वे राष्ट्रपति चुनाव को राजनीति का विषय ही नहीं मानते हैं। उनकी दो टूक राय है कि अगर उनका निर्णय कोई ऐतिहासिक भूल है तो उन्हें यह भूल करने दिया जाना चाहिए।

नीतीश की यह जिद शुद्ध रूप से एक राजनीतिक विषय पर व्यक्तिगत सनक में लिये गये उनके फैसले की संगति में ही है। अगर वे राष्ट्रपति के चुनाव को राजनीति का विषय मान लेते हैं तो उन्हें इस चुनाव के तमाम राजनीतिक पहलुओं पर ध्यान देना होगा। उन्हें यह भी मानना होगा कि वे खुद 2019 में एनडीए के खिलाफ जीत की जिस विजय दिलाने वाली राजनीतिक रणनीति को तैयार करने की बात कर रहे हैं, वह आकाश से टपकने वाली रणनीति नहीं होगी। उसे धीरे-धीरे विकसित करना होगा, जनता में उसकी विश्वसनीयता कायम करनी होगी।

कम से कम इतना तो बिना किसी दुविधा के कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति के चुनाव की तरह के अहम मौके पर एकजुट न होना विपक्ष की शक्ति और विश्वसनीयता को निश्चित तौर पर बढ़ाता नहीं है। उल्टे, नीतीश और उनकी पार्टी के निर्णय ने भाजपा को बिहार के वर्तमान शासक गठजोड़ को ही एक अस्वाभाविक गठजोड़ कहने का अवसर दिया है।

नीतीश कुमार एक ओर 2019 में मोदी को पराजित करने की रणनीति के प्रति अपनी प्रतिबद्धता की बात करते हैं और दूसरी ओर विपक्ष की एकता के प्रदर्शन की इस अहम कार्यवाही से अपने को अलग रख रहे हैं। कथनी और करनी के बीच इस प्रकार के प्रकट भेद से राजनीति में नेता और दल की विश्वसनीयता बढ़ती नहीं, बल्कि प्रतिहत होती है। इसे किसी भी वक्त राजनीति में अवसरवादी समझौता करने का रास्ता खुला रखने की रणनीति कहा जाता है।

नीतीश कुमार पहले भी भाजपा के साथ अपनी गृहस्थी बनाने का तिक्त अनुभव ले चुके हैं। लेकिन राजद के साथ गठबंधन के कारण उन्हें अपने राजनीतिक कैरियर में उससे कोई नुकसान नहीं उठाना पड़ा। लगता है इसी से उन्होंने यही नतीजा निकाला है कि हमेशा इस प्रकार की एक तरल परिस्थिति में उनका निजी राजनीतिक भविष्य सुरक्षित है। कहना न होगा, नीतीश जी अपनी भूमिका को पूरब के शरद पवार की भूमिका के रूप में देखते हैं जो हमेशा अपने बारे में एक प्रकार के अनिश्चय की धारणा से ही अपनी अहमियत को साबित करते रहे हैं। शरद पवार के अनुभव से ही वे यह नहीं समझ पा रहे हैं कि इन तमाम वजहों से ही आज महाराष्ट्र में शिव सेना और भाजपा की सरकार है।

भाजपा के सांप्रदायिक फासीवाद का मुकाबला किसी प्रकार के ढुलमुलपन से मुमकिन नहीं है। इस तथ्य को नीतीश जी जितना जल्द समझेंगे, उतना ही वे भारत की राजनीति में अपनी अपेक्षित भूमिका का पालन कर पायेंगे, जिसे वे खुद 2019 में मोदी सरकार को पराजित करने के लक्ष्य के रूप में पेश कर रहे हैं।

(अरुण माहेश्वरी साहित्यकार, स्तंभकार और लेखक हैं और आजकल कोलकाता में रहते हैं।)

आपातकाल की तीन यादें

राष्ट्रपति के नाम प्रधानमंत्री का अत्यंत गोपनीय पत्र

राष्ट्रपति के नाम प्रधानमंत्री का अत्यंत गोपनीय पत्र (यह पत्र राष्ट्रपति कार्यालय की फाइल में मिला)...

राष्ट्रपति के नाम प्रधानमंत्री का अत्यंत गोपनीय पत्र (यह पत्र राष्ट्रपति कार्यालय की फाइल में मिला)

प्रधानमंत्री,
भारत सरकार
नयी दिल्ली, 25 जून 1975

आदरणीय राष्ट्रपतिजी, जैसा कि कुछ देर पहले आपको बताया गया है कि हमारे पास जो सूचना आयी है उससे संकेत मिलता है कि आंतरिक गड़बड़ी की वजह से भारत की सुरक्षा के लिए गंभीर संकट पैदा हो गया है। यह मामला बेहद जरूरी है। मैं निश्चय ही इस मसले को कैबिनेट के समक्ष ले जाती लेकिन दुर्भाग्यवश यह आज रात में संभव नहीं है। इसलिए मैं आप से इस बात की अनुमति चाहती हूं कि भारत सरकार (कार्य संपादन) अधिनियम 1961 संशोधित नियम 12 के अंतर्गत कैबिनेट तक मामले को ले जाने की व्यवस्था से छूट मिल जाय। सुबह होते ही कल मैं इस मामले को सबसे पहले कैबिनेट में ले जाऊंगी। इन परिस्थितियों में और अगर आप इससे संतुष्ट हों तो धारा 352-1 के अंतर्गत एक घोषणा किया जाना बहुत जरूरी हो गया है। मैं उस घोषणा का मसौदा आपके पास भेज रही हूं।

जैसा कि आपको पता है धारा-353 (3) के अंतर्गत इस तरह के खतरे के संभावित रूप लेने की स्थिति में, जिसका मैंने उल्लेख किया है, धारा-352 (1) के अंतर्गत आवश्यक घोषणा जारी की जा सकती है।

मैं इस बात की संस्तुति करती हूं कि यह घोषणा आज रात में ही की जानी चाहिए भले ही कितनी भी देर क्यों न हो गयी हो और इस बात की सारी व्यवस्था की जाएगी कि इसे जितनी जल्दी संभव हो सार्वजनिक किया जाएगा।

आदर सहित
भवदीय
(इंदिरा गांधी)

(समकालीन तीसरी दुनिया, जून 2011 से)

राष्ट्रपति अहमद द्वारा आपातकाल की घोषणा

संविधान के अनुच्छेद 352 के खंड 1 के अंतर्गत प्राप्त अधिकारों का इस्तेमाल करते हुए मैं, फखरूद्दीन अली अहमद, भारत का राष्ट्रपति इस घोषणा के जरिए ऐलान करता हूं कि गंभीर संकट की स्थिति पैदा हो गयी है जिसमें आंतरिक गड़बड़ी की वजह से भारत की सुरक्षा के सामने खतरा पैदा हो गया है।

अंबिका सोनी ने गिरफ्तार कराया पत्रकार को

1 नवंबर 1975 को 21वें राष्ट्रमंडल संसदीय सम्मेलन के प्रतिनिधियों का नागरिक अभिनंदन लाल किले के दीवान-ए-आम में शाम को 7 बजे आयोजित किया गया था।

इस समारोह की रिपोर्टिंग के लिए 'फाइनेंशियल एक्सप्रेस' के रिपोर्टर वीरेन्द्र कपूर को जिम्मेदारी सौंपी गयी थी।

समारोह के समाप्त होने के बाद युवकों के एक समूह ने नारे लगाए और हवा में पर्चे फेंके। तुरत ही पुलिस ने पहुंच कर वहां उन युवकों को गिरफ्तार कर लिया।

वीरेन्द्र कपूर ने देखा कि एक युवक की कलाई को एक महिला ने कस कर पकड़ लिया है और इस महिला के बारे में उन्हें बाद में पता चला कि वह अंबिका सोनी हैं।

वीरेन्द्र कपूर ने बताया कि उन्होंने अंबिका सोनी से कहा कि 'लोगों को गिरफ्तार करने का काम आप पुलिस पर छोड़ दीजिए।'

कपूर ने बताया कि अंबिका सोनी के साथ उनको बहस करते देख तत्कालीन एसपी (सीआईडी) के. एस. बाजवा वहां दौड़ते हुए पहुंचे और श्रीमती सोनी से बातचीत करने के बाद पुलिस वालों को आदेश दिया कि वे कपूर को गिरफ्तार कर लें। उन्हें गेट के बाहर खड़ी पुलिस की गाड़ी तक ले जाया गया।

कपूर का कहना है कि इस बीच शायद अंबिका सोनी को जानकारी मिली कि मैं एक पत्रकार हूं और फिर वह मेरे पास आयीं और आकर मुझसे कहा कि 'क्या आपको ऐसा नहीं लगता कि उस लड़के को गिरफ्तार कराने में आपको मेरी मदद करनी चाहिए थी न कि मुझे रोकना चाहिए था?'

वीरेन्द्र कपूर को लगा कि यह महिला मुझसे चाहती है कि मैं खेद व्यक्त करूं और उन्होंने कहा कि 'मैं अभी भी मानता हूं कि जब भारी संख्या में यहां पुलिस तैनात है तो आपको इससे कोई सरोकार नहीं होना चाहिए।'

वीरेन्द्र कपूर ने बताया कि यह सुनकर अंबिका सोनी ने कहा-'ठीक है फिर जाओ बंद रहो।' वीरेन्द्र कपूर को कोतवाली पुलिस स्टेशन ले जाया गया और फिर जेल भेज दिया गया।

(स्रोत : शाह आयोग की रिपोर्ट)
(समकालीन तीसरी दुनिया, जून 2011 से)

रीता बहुगुणा के पिता को भी नहीं मालूम था, आपातकाल लागू हो गया

कैबिनेट से कोई सलाह नहीं कैबिनेट सचिव बी.डी. पांडेय को 25-26 जून की रात में लगभग साढ़े चार बजे प्रधानमंत्री निवास से फोन आया जिसमें कहा गया कि सवेरे छह बजे मंत्रिमंडल की एक बैठक होनी है। उन्हें इस बात की हैरानी थी कि 25 और 26 की रात में इतने बड़े पैमाने पर गिरफ्तारी का आदेश किसने और कैसे जारी किया। सामान्य तौर पर इस तरह के सभी निर्देश गृहमंत्रालय के जरिए जारी होते थे और उनके संचार के अपने चैनल थे।

> उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री हेमवती नंदन बहुगुणा ने बताया कि आपातकाल की घोषणा के बारे में उनको 26 जून की सुबह उस समय जानकारी मिली जब वह केंद्रीय मंत्रियों उमाशंकर दीक्षित और केशव देव मालवीय के साथ नाश्ते की मेज पर थे।

बी.डी. पांडेय के अनुसार 26 जनवरी 1975 से पहले कैबिनेट की किसी भी बैठक में इसका जिक्र नहीं हुआ था कि देश के हालात इस कदर खराब हो गए हैं कि इमरजेंसी लगाने की जरूरत पड़ रही है। इंटेलिजेंस ब्यूरो के डायरेक्टर आत्मा जयराम ने अपने बयान में बताया कि देश में इमरजेंसी लगा दी गयी है। इसकी जानकारी उन्हें 26 जून को अपने दफ्तर जाने के बाद ही हुई।

भारत सरकार के गृह सचिव एस.एल.खुराना को इसकी जानकारी 26 जून को सवेरे छह बजे उस समय हुई जब उन्हें कैबिनेट मीटिंग की सूचना मिली। वह लगभग साढ़े छह बजे पहुंचे तो उन्होंने देखा कि कैबिनेट की बैठक चल रही थी। पूर्व कानून और न्यायमंत्री एच.आर.गोखले को इमरजेंसी लगने की जानकारी पहली बार तब हुई जब 26 जून 1975 को सबेरे वह मंत्रिमंडल की बैठक में भाग लेने पहुंचे।

आपातकाल की घोषणा के बारे में न तो उनसे और न उनके मंत्रालय से किसी तरह का सलाह मशविरा किया गया। शाह कमीशन की रिपोर्ट ने पाया कि भारत में उस समय कहीं भी ऐसी कोई असाधारण स्थिति नहीं पैदा हुई थी जिसकी वजह से सामाजिक, आर्थिक अथवा कानून की ऐसी समस्या पैदा हुई हो।

(बाकी पेज 18 पर)

किसका क्रिकेट कौनसी देशभक्ति कहाँ के नायक !!

बादल सरोज

ऐसे में जब कारपोरेट कम्पनियां क्रिकेट के नाम पर राष्ट्रवादी उन्माद भड़काने में खूब सारा पैसा झोंक रही हैं- इतना उन्माद कि अक्सर खेल को एक तरह के युद्द में बदल कर रख दिया जाता है। क्रिकेट खिलाड़ियों को युद्द-देवताओं के दर्जे तक ऊंचा उठाकर रख दिया जाता है।

ऐसे में जब अपनी क्षणिक लोकप्रियता से अभिभूत कोई कोहली, भारतीय क्रिकेट के सबसे सरल और विरल खिलाड़ी, साबुन तेल दारू पेप्सी बेचने की बजाय खेल पर ध्यान देने वाले कुम्बले को सार्वजनिक रूप से चपतिया देता है और विज्ञापन का भूखा मीडिया उससे सवाल तक करने की हिम्मत नहीं करता।

ऐसे में यह जरूरी हो जाता है कि इस स्थिति को, राष्ट्रवाद और गर्व से आगे जाकर समाज के व्यापक परिप्रेक्ष्य मंम देखा जाये। बहुत कम ही होते हैं जी ऐसा करने या कहने का साहस दिखा पाते हैं- बांग्लादेश की क्रिकेट टीम के दार्शनिक मन के कप्तान और हीरो की तरह धड़ल्ले से बोलने वाले तो बहुत ही कम।

भारत-पाकिस्तान के चैंपियन्स ट्राफी फाइनल मैच के कुछ घंटे पहले बांग्लादेश की क्रिकेट टीम के कप्तानमशरफेमुर्तजा ने ऐसी ही समझदारीपूर्ण बात कही, जिसकी झलक भले जिनके स्वार्थ पर इस नौजवान ने हमला किया है, उस मीडिया में न दिखी हो किन्तु इसकी गूँज देर तक कायम रहेगी।

प्रस्तुत है मुर्तजा की टिप्पणी हिन्दी में-

ठीक है, मैं एक क्रिकेटर हूँ, मगर क्या मैं किसी एक का भी जीवन बचा सकता हूँ ? एक डॉक्टर बचा सकता है। मगर देश में अच्छे डॉक्टर के लिए कोई ताली नहीं बजाता। उनके लिए ताली बजाइये, उनकी महानता की कहानियां गढ़िये। वे कुछ और अधिक जिंदगियां बचाएंगे। स्टार वे हैं। स्टार मजदूर हैं जो देश का निर्माण करते हैं। हम क्रिकेट खेल कर क्या निर्माण करते हैं ? क्या हम क्रिकेट से एक ईंट भी बना सकते हैं ? क्या क्रिकेट के मैदान में धान उग सकते हैं ? स्टार वो हैं- जो ईंटे बनाकर इमारतें बनाते हैं, कारखानों में सचमुच की चीजें बनाते हैं, खेतों में फसलें उगाते हैं।

हम क्या करते हैं ? अगर बेबाक साफगोई से कहा जाए तो - हम पैसे लेते हैं और खेलते हैं। एक गायक, एक एक्टर की तरह हम अपनी कला का प्रदर्शन करते हैं। इससे ज्यादा कुछ नहीं। (1971 के मुक्ति संग्राम के) मुक्तियोद्धाओं ने जीत कर पैसे पाने के लिए गोलियां नहीं खाई थीं। किसकी किससे तुलना की जा रही है ? अगर क्रिकेट में कोई हीरो है तो वो रकीबुल हसन और (अब्दुल हलीम) जेवेल जैसे शहीद हैं। रकीबुल भाई ने (1971 के मुक्ति संघर्ष) के पहले अपने बैट पर जय बांग्ला लिखकर मैदान में उतरने की हिम्मत दिखाई थी। यह है बड़ी बात। उससे भी बड़ी बात यह है कि वह अपने पिता की बन्दूक लेकर मोर्चे पर चले गये थे।

शहीद जेवेल तो क्रिकेट छोड़कर मुक्तिवाहिनी की सबसे खतरनाक जिम्मेदारी वाली गोरिल्ला टुकड़ी क्रैक प्लाटून में शामिल हो गये थे। मोर्चे पर शहीद हुये थे। बहादुरी इसे कहते हैं। फास्ट बॉलिंग से जूझना रोमांटिकता है, ड्यूटी है, बहादुरी नहीं है।

जो लोग क्रिकेट से जोड़कर देशभक्ति-राष्ट्रभक्ति की चीख पुकार मचाते हैं, अगर वे सिर्फ एक दिन के लिए केले के छिलकों को सड़क पर फैंकना, रास्तों में थूकना बन्द कर दें, ट्रैफिक के नियमों को मानना शुरू कर दें तो देश काफी बदल जाए। क्रिकेट के बाद के शोर और चिल्लपों में विराट ऊर्जा बर्बाद करने की बजाय अगर अपना काम (एक दिन के लिए भी) ईमानदारी से करना शुरू कर दें तो ज्यादा देशभक्तिपूर्ण होगा। मुझे तो इन लोगों की देशभक्ति की परिभाषा पल्ले नहीं पड़ती। (लोकजतन डेस्क)

सैलानी की डायरी

अंग्रेज चले गए लेकिन अंग्रेजी छोड़ गए। अब इस स्टेशन पर हिन्दी में थूकने पर पांच सौ रूपए जुर्माना लगेगा और अंग्रेजी में थूकने पर पचास फीसदी की छूट लिखी गई है !